

भाषा और मानकीकरण

वीरेन डंगवाल के साथ फ़ैयाज़ अहमद की बातचीत

आज हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि वीरेन डंगवाल हमारे बीच नहीं हैं। मगर भाषा शिक्षण को लेकर बतौर लेखक, बुद्धिजीवी उनका नज़रिया क्या था इसे जानने के लिए फ़ैयाज़ अहमद ने उनके साथ यह बातचीत की थी। पाठ्यपुस्तक की भाषा कैसी होनी चाहिए, क्या बच्चों की भाषा शुरुआती कक्षाओं में ही शुद्ध कर देनी चाहिए, भाषा सीखने का दायरा स्कूल तक ही सीमित है या उससे ज्यादा व्यापक है। इन सभी सवालों पर प्रस्तुत है यह बातचीत।

फ़ैयाज़ : पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में बात करें, तो भाषा के मानकीकरण का क्या अर्थ है?

वीरेन डंगवाल : मैं नहीं समझता कि प्राथमिक स्तर पर बच्चों को कोई एक मानक भाषा बतला दी जानी चाहिए। क्षेत्रीय और वर्गीय असर ये दोनों ही भाषा का निर्धारण करने वाले बहुत ही महत्वपूर्ण कारक हैं। उनको ध्यान में रख कर ही उस स्तर पर बच्चों की शिक्षा का कोई काम किया जा सकता है।

फ़ैयाज़ : पाठ्यपुस्तक तैयार करते समय क्या किसी पॉलिसी या कोई दिशा निर्देश की ज़रूरत है? खासकर प्राथमिक पाठ्यपुस्तक तैयार करते समय?

वीरेन डंगवाल : पाठ्यपुस्तक तैयार करने का काम सरकार या सरकार द्वारा चयनित समिति का है। वो समिति अपने अनुरूप तय करेगी और निर्णय लेगी कि पाठ्यपुस्तक कैसी हो, उसकी विषय-वस्तु क्या हो और उसमें कैसी भाषा का इस्तेमाल हो। यहां भी वही चीज़ें, वही तत्व, कारक का काम करेंगे। जैसे कि क्या नज़रिया है, और कौन लोग उसको तय करने वाले हैं। नीति की ज़रूरत या दरकार होती है पर वो उसी नज़रिये से तय होती है। ज़ाहिर है कि सरकार का भी एक नज़रिया होता है और वो भी समिति के लिहाज़ से ही तय करती है।

फ़ैयाज़ : सन् 1986 में शिक्षा नीति लागू हुई। उसमें भी सरकार की तरफ से दिशा निर्देश दिए गये। उसके बाद साल 2005 में एनसीएफ बना। उसके आधार पर देखा जाए तो किस तरह की भाषा होनी चाहिए, पाठ्यपुस्तक में आप किस परिवेश को, किस संदर्भ को जोड़ना चाहेंगे? उसमें इन सबका जिक्र किया गया है। लेकिन हम ये देखते हैं कि पाठ्यपुस्तक में, अगर हिन्दी राज्यों की बात करें तो राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश यानी पूरी जो हिन्दी पट्टी है, उसमें भाषा के स्तर पर काफी अलग-अलग भाषाएं देखने को मिलती हैं। मध्यप्रदेश की जो हिन्दी है, उत्तर प्रदेश की हिन्दी उससे अलग है।

वीरेन डंगवाल : साल 1986 की जो नई शिक्षा नीति थी उसको लेकर देश भर में काफी बहस छिड़ी थी। उस समय लोग ये महसूस कर रहे थे कि कहीं ये नीति शिक्षा के स्तरों का विभाजन बढ़ाने वाली तो नहीं है। एक तरह से ऐसा थोड़ा बहुत हुआ भी। उस समय भूमंडलीकरण की जो नीति तैयार हो रही थी उससे और व्यवसायिक शिक्षा का जो ताना बाना इस समय पूरा फैल गया है उससे, व्यापक पैमाने पर शिक्षा का

व्यवसायीकरण हुआ है। हालांकि उसके क्या असर हुए और उसने शिक्षा का क्या हाल किया है ये तो एक अलग और अहम बहस है। फिलहाल इसमें हम नहीं जा सकते। लेकिन उसने भाषाओं को और इसकी एकात्मकता को बहुत पीछे छोड़ दिया। यानी उस शिक्षा नीति ने भाषा की शिक्षा के व्यवसायीकरण की जो प्रक्रिया थी, उसको तेज किया। आप जिसे हिन्दी पट्टी कह रहे हैं क्या आप वहां कोई एक भाषा का इस्तेमाल कर सकते हैं? क्या झारखंड के बच्चे और राजस्थान के बच्चे पर प्राथमिक स्तर पर एक ही भाषा थोपना बच्चे की संवेदना के साथ अन्याय नहीं? मेरे ख्याल से ऐसा नहीं हो सकता है। क्षेत्रीय भिन्नताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसके अलावा उनके बीच जो आर्थिक वर्गीकरण हैं, भिन्नताएं हैं वे भी कहीं न कहीं भाषा के इस तथाकथित मानकीकरण के विरोध में खड़ी हो सकती हैं।

फ़ैयाज़ : हां, एनसीएफ ने कहा है कि जब आप भाषा या पाठ्यपुस्तक का निर्माण करेंगे, उसमें स्थानीयता को प्रमुखता मिलनी चाहिए। जब स्थानीयता की बात आती है तो ज़ाहिर है कि झारखण्ड की जो स्थानीय भाषा, बोली है, वह राजस्थान से अलग होगी और राजस्थान की बिहार से अलग होगी।

वीरेन डंगवाल : हां, भिन्नताएं भी होनी ही चाहिए। इसके अलावा जहां तक वर्गीय भिन्नता की बात है, तो मैं जहां से आता हूं, रोहिल खण्ड से, वहां गलियों में खेलने वाले बच्चे लड़कों को, अरे लौण्डे, बोलते हैं। मेरा पोता सालवान स्कूल में केजी कक्षा में पढ़ता है। मैंने जब उससे कहा, अरे लौण्डे, तो उसे ये शब्द बड़ा रोचक लगा। वो उसको दोहराने लगा। अब उसके मां-बाप और रिश्तेदार कहते हैं कि आप इसे क्या सिखा देते हैं। वे बुरा मान कर नहीं बोलते, बल्कि मुझे आगाह करते हैं कि आप जो बोलते हैं, ये पकड़ लेता है। क्योंकि वो शब्द फोनेटिक है। मतलब ध्वन्यात्मक है। बच्चों की बोली-भाषा में ध्वन्यात्मकता तो होनी चाहिए।

फ़ैयाज़ : अभी कुछ दिनों पहले भी गुजरात की एक पाठ्यपुस्तक में छोकरा-छोकरी शब्द का इस्तेमाल किया गया था। काफी बहस हुई। उन सबको हटा देना पड़ा।

वीरेन डंगवाल : हां, मैं जिस वर्गीय भिन्नता की बात कह रहा हूं वो यही है। ये एक बड़ी समस्या है। छोकरा-छोकरी वाली तो आपने बड़ी दिलचस्प जानकारी दी। 'अरे छोकरे!' ऐसा वे आपस में ही बोलते हैं? 'अरे छोरी! ओ छोरे! ओ छोरी!' ऐसे आवाज लगाते हैं। हमारे यहां पहाड़ में छोरा-छोरी कहते हैं। वहां छोरा उन्हें कहते हैं जो थोड़े लावारिस किस्म के बच्चे होते हैं जिनके मां-बाप नहीं होते हैं या जो थोड़े अनाथ टाइप के होते हैं। फिर मां जब बेटियों को लाड़ से बुलाती हैं तो ज़्यादा लाड़ में कहती हैं, अरे छोरी, ऐ छोरी, इधर आ। ये गाली नहीं होती। हमारी दादी जब हमें बहुत प्यार करने की कोशिश करती थी तो गालियां बकती थी। तो ये जो सांस्कृतिक खाई है वह बड़ी विचित्रताएं पैदा कर देती है।

फ़ैयाज़ : जी! लेकिन यहां हम जिन शब्दों का उदाहरण ले रहे हैं वो एक बोली, एक मौखिक भाषा है। जब लिखने या पढ़ने की बात आती है तो उसका किस स्तर पर मानकीकरण किया जाए। और उसकी क्या प्रक्रिया हो?

वीरेन डंगवाल : मेरे खयाल से माध्यमिक स्तर पर उस प्रक्रिया को तवज्जो दी जा सकती है। मानकीकरण की ओर क्रमशः जाने की शुरुआत कर सकते हैं। इस तरह की भाषा की शुरुआत आप आठवीं, सातवीं कक्षा में कर सकते हैं। आप ये बता सकते हैं कि ये हमारी बोलियां हैं, इन बोलियों से हम चलते हैं। इन बोलियों के साथ से, इनके समुच्चय से हमारी भाषा बनी है। इस भाषा में, एक रूप मानकीकृत तरीके से हो सकता है। लेकिन ये उनकी बोलियों की कीमत पर नहीं होना चाहिए।

फ़ैयाज़ : फिलहाल एक सवाल ये भी है कि बोली भाषा की अपनी एक संरचना होती है और लिखित भाषा की एक अपनी अलग। ये एक-दूसरे से भिन्न भी हैं और इनमें असमानताएं भी हैं। इन असमानताओं को कैसे दूर किया जाना चाहिए।

वीरेन डंगवाल : देखिए, जो बोली वाली भाषा है वो अनौपचारिक है। मानकीकरण एक औपचारिकता है। उसमें एक उच्चतर सामाजिकता है। जबकि बोली में एक अनौपचारिकता है और उसके पीछे काम चलाने का और बेहतर तरीके

से काम चलाने का भाव होता है। शिक्षा के स्तर पर बोली भाषा को एक मानक भाषा के तौर पर हम जितनी दूर तक ले जाएंगे वो उतनी ही ज्यादा असरकारक हो सकती है। क्योंकि यह उसकी प्रभावोत्पादकता को, भाषा की समझाने की क्षमता को बढ़ाने का काम कर सकती है। जाहिर है कि यहां हम ये कह रहे हैं कि हम उसको थोड़ा उन्नत स्तर पर ले जाने का काम करेंगे। लेकिन उसको जितना आगे ले जाया जा सके उतना बेहतर है।

फ़ैयाज़ : वैसे तो उस दिशा में अभी कुछ आगे बढ़े हैं, लेकिन बाल साहित्य की बात करें, तो पंचतंत्र, कथा सरित्सागर, हितोपदेश की कथाओं को छोड़ दें तो हिन्दी में बहुत कम लिखा गया है। क्या ये कहा जाए कि इसकी वजह ये है कि बाल साहित्य को इतनी गंभीरता से नहीं लिया गया?

वीरेन डंगवाल : बाल साहित्य को बिल्कुल गंभीरता से नहीं लिया गया है। हमारे यहां तो बच्चों को ही गंभीरता से लेने की आदत नहीं है। हिन्दी भाषी इलाके में तो ये एक चलन रहा है। मेरे खयाल से बांग्ला में ये समस्या नहीं है। सुकुमार राय ने तो हजबाला लिखा। सत्यजीत राय जैसे बड़े लेखक ने काफी लिखा। वहां अभी भी निरंतर काम हो रहा है। इसके अलावा तेलुगु या मराठी सहित दूसरी भाषाओं में भी समस्या नहीं है। बस हिन्दी में, हिन्दी के इलाकों में ये समस्या अधिक है।

फ़ैयाज़ : माना जाता है कि यदि बच्चों के लिए लिखेंगे तो आम और आसान वाक्यों में लिखेंगे और कुछ लोग कहते हैं कि आसान लिखना आसान नहीं। तो क्या लोग लिखने से भागते हैं?

वीरेन डंगवाल : हिन्दी में इस बात पर कड़वी बहस चल रही है। कविता में सरलता को काव्यात्मक दुर्गुण की नजर से देखा जा रहा है और जटिलता को काव्य मूल्य बनाने की कोशिश हो रही है। लेकिन जाटिलता या सरलता रचना के मूल्य नहीं हो सकते।

फ़ैयाज़ : हम अक्सर कहते हैं कि ये बात बच्चों के सामने नहीं कहनी चाहिए या बच्चों को ये शब्द नहीं सुनाना चाहिए। ये पाठ एक विशेष आयु के बच्चे के लिए उचित है या अनुपयुक्त है, ये कैसे तय किया जा सकता है। या इसकी प्रक्रिया क्या हो सकती है?

वीरेन डंगवाल : हां, ये तो वाकई में एक बड़ी परेशानी है। मैं तो अपने घर में ही इस समस्या को देख रहा हूँ। दो बच्चे वो बच्चा स्कूल से आएगा। और चूंकि मैं उससे काफी ऊटपटांग गप्प मारता हूँ तो वो मुझसे काफी प्रसन्न रहता है। हम लोग बातचीत के क्रम में खूब लम्बे-लम्बे और निरर्थक वाक्य भी बोलते हैं। हमारे बीच बहुत देर तक संवाद चलता है। वो उन निरर्थक बातों से बहुत प्रसन्न रहता है। वो सिर्फ आवाजे हैं जो वो बोलता है। और मैं उन्हीं आवाजों में जवाब देने की कोशिश करता हूँ। लेकिन लोग हमारी बातचीत को दूर से तमाशे की तरह देखते हैं। और ये समझते हैं कि ये पागलपन है। इसी तरह जैसे मैंने लौण्डे शब्द का इस्तेमाल किया और वो उसने पकड़ लिया। अब ये तय कैसे हो कि कौन से शब्द बच्चों के लिए इस्तेमाल होने चाहिए और कौन से नहीं होने चाहिए। समाजीकरण करने की प्रक्रिया को बच्चों पर किस उम्र से लादना शुरू करें और ये तय कैसे करें? ये कैसे हो नीशिमा आप बताइये न। आप मां हैं।

नीशिमा : जो शब्द हमें ही सुनने में अच्छे नहीं लगते उसे हम बच्चों को कैसे सिखा सकते हैं।

वीरेन डंगवाल : भई ऐसा है कि जब मेरा बेटा छोटा था तो मैं ये कहता था कि इसे मेहरियों के लड़कों के साथ खेलने जाने दो। मैं कोशिश करता था कि वो उनके साथ पतंग उड़ाये, जितना संभव हो आवारागर्दी करे। मैंने पांचवी, छठी, सातवीं तक इस बात की खूब छूट दी।

फ़ैयाज़ : आपका जो पूरा लेखन है, उसकी भाषा में, आपकी कविताओं में अक्सर असामान्य शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। जैसे अभी हम ऊटपटांग शब्दों के इस्तेमाल की बात कर रहे थे, जिसे हम निरर्थक कहते हैं, शायद वो निरर्थक नहीं होते।

वीरेन डंगवाल : नहीं होते। कोई भी शब्द निरर्थक कैसे हो सकता है?

फ़ैयाज़ : आपकी कविताओं के जो विषय हैं उन्हें भी कुछ हद तक असामान्य कहा जा सकता है। ये कहा जा सकता है कि “एक खास तरह की कविताएं लिखी जा रही हैं” तो इसके क्या अर्थ हैं? आप कविताओं में जिन शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, या जो विषय लेते हैं उनका क्या संदर्भ है?

वीरेन डंगवाल : उनमें कुलीनता द्रोह हो सकता है जो हमारे भीतर बहुत गहरे मौजूद है। ये एक अन्तर्विरोध भी हो सकता है। क्योंकि आप एक ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जो एक सतत नाटक है। जिसके उच्चारण, बोलचाल, हाव-भाव सब कुछ में नाटक है और वो बाध्यता भी है। और दूसरी ओर एक खुली हुई, वृहत्तर दुनिया है- पतंगबाजों की, जामा मस्जिद की, सीता-राम की, या दफ्तरों की, चपरासियों, नौकरों की, रिक्शा चलाने वालों की, और बाबुओं, अफसरों की भी। इस वृहत्तर समाज और समुदाय में सब जगह भाषा का इस्तेमाल हो रहा है। हम सिर्फ एक भाषा के ठेकेदार थोड़े ही हैं। अगर हम भाषा के लेखक हैं तो सबकी भाषा हमारी भाषा है और सबको ये आना चाहिए। मेरा मानना है कि जो जिन्दगी की भाषा है वो कविता की भाषा होनी चाहिए।

फ़ैयाज़ : यदि हम मानते हैं कि सबकी भाषा है तो इसका मॉडल कौनसा है ये कैसे तय करें। क्या किसी विशेष मॉडल को हम मानकीकरण मानें?

वीरेन डंगवाल : मानकीकरण एक सांस्कृतिक अनुशासन है। वो समाज में संस्कृति के द्वारा किया जाने वाला नियंत्रण है। समाज पर जिसका कब्जा है उसी की भाषा है।

फ़ैयाज़ : मैं यही कह रहा था कि हमारे समाज की भाषा है। समाज में रिक्शावालों की भी भाषा है, सब्जी बेचने वालों की भी और जो कपड़े धोते हैं उनकी भी भाषा है। अगर हम लेखक की बात करें, विशेष तौर पर हिन्दी के लेखक की तो रहीम, कबीर, प्रेमचंद, अज्ञेय, सोबती सबकी अपनी एक भाषा है। तो अगर हम किसी एक भाषा को मानक या मॉडल मानते हैं तो बाकी दूसरी भाषाओं को या दूसरे लेखक को कहां रखेंगे?

वीरेन डंगवाल : नजीर को इतने अरसे तक कहां रखा गया? उनको हिन्दी या उर्दू का शायर माना ही नहीं गया, या कहें कि इस बात पर भी विवाद था कि वे शायर हैं भी कि नहीं। तो ये सांस्कृतिक नियंत्रण का ही सवाल है। जयशंकर प्रसाद की भाषा ही मानक भाषा है और उसी जमाने में लिखी हुई प्रेमचंद की भाषा नहीं है। जबकि दोनों भाषाएं बिल्कुल बहन-बहन हैं। तो ये संभव नहीं हो सकता है एक ही युग, समय और समाज में अलग-अलग स्तरों पर भाषा के अलग-अलग रूप व्यवहार में लाए जा रहे हो। हां, आप ये काम जरूर कर सकते हो कि उनका एक मिश्रण तैयार करो उस स्तर पर, जहां पर आप मानकीकरण को प्रारंभ करते हो। जो हमारी निगाह में माध्यमिक स्तर का है।

फ़ैयाज़ : अगर हम किसी भी स्तर पर मानकीकरण की शुरुआत करेंगे तो कोई एक पैमाने तो बनाएंगे। चाहे वो प्रेमचंद हों, फनीश्वर नाथ रेणु हों, जायसी हों, तुलसीदास हों। अगर हम एक पैमाने को स्वीकार कर रहे हैं तो जो दूसरे लेखक की, दूसरे समाज की, दूसरे स्थान की भाषा है या लेखन है उसे अस्वीकार किया जाएगा। ये कहां तक उचित है?

वीरेन डंगवाल : क्या ऐसा होगा कि वो अस्वीकृत की जाएगी? क्या अब तक ये समस्या आई थी हिन्दी में? जिस जमाने में प्रेमचंद मानक बने थे क्या उस जमाने में प्रसाद का पढ़ा जाना कम हुआ या बंद हुआ? या जब उनके बाद रेणु आए तो उनकी स्वीकार्यता पर इसका कोई असर पड़ा था? श्री लाल शुक्ल ने बाद में लगभग प्रेमचंद वाली भाषा का इस्तेमाल करते हुए अपना उपन्यास ‘राग दरबारी’ लिखा। कोई समस्या आई क्या? मेरे ख्याल से तो नहीं आई। क्योंकि अगर आप मानकीकरण को संस्कृतिकरण से बहुत ज्यादा नहीं जोड़ रहे हैं, संस्कृतिकरण से मेरा मतलब केवल संस्कृत से नहीं बल्कि संस्कृति से भी है, तो उससे कोई समस्या नहीं आती है। आप यदि उसका ब्राह्मणवादीकरण नहीं करेंगे तो कोई दिक्कत नहीं आएगी। हिन्दी का इलाका काफी बड़ा और लोकतांत्रिक है। उस पर तो सबकी छाप पड़ेगी।

फ़ैयाज़ : राजनीतिक स्तर पर हो, माध्यमिक या हाईस्कूल स्तर पर, हिन्दी में कविताओं को पढ़ाने की जो परंपरा रही है वो बहुत ही अलग है। क्या वजह है कि हिन्दी में हर पाठ्यपुस्तक में, पाठों में कविता होती है। पर उन कविताओं को इतनी गंभीरता से नहीं लिया जाता है।

वीरेन डंगवाल : हां, गंभीरता से नहीं लिया जाता है। मुझे लगता है ये प्रवृत्ति नई शिक्षा नीति के साथ विकसित हुई है। हम लोगों ने जब बचपन में कविताएं पढ़ीं तो अध्यापकों ने बहुत ही मजे से पढ़ाया। हमें भी कविता में बड़ी दिलचस्पी होती थी। मैंने आपको सिपाही का उदाहरण दिया जो काफी तल्लीनता से गा रहा था। मुझे बहुत मजा आया और लगा कि कितना सासूम है ये आदमी जिसने अपने पास छेद वाली बंदूक रखी हुई है। कविता पढ़ाने की तो समस्या अब हो रही होगी। पिछले साल मैं एनसीईआरटी की एक वर्कशॉप में गया था। वहां कई अध्यापक आए हुए थे। मुझे लगा कि समस्या जितनी अध्यापकों के साथ है उतनी कविताओं के साथ नहीं है। इत्तेफाक से दसवीं या नौवें में मेरी भी एक कविता है। इसीलिए मुझे भी बुलाया गया था। और मैंने देखा कि जो युवा अध्यापक हैं, जो थोड़ा-सा पढ़ने लिखने में दिलचस्पी रखने वाले हैं, वो तो सभी कविताओं को लेकर उत्साह में थे। लेकिन जो थोड़े जड़मति हिंदी वाले थे उन्हें कोई उत्साह नहीं था। हिन्दी भी तो एक ब्राण्ड हो गई है। उन्होंने अपना दिमाग बंद करके रखा है।

फ़ैयाज़ : कविता को कक्षा में पढ़ाते वक्त किन चीजों का ध्यान रखें?

वीरेन डंगवाल : कविता में यदि कोई नाट्य तत्व या कोई संवेदना का तत्व है उनको उभारने का काम अध्यापकों का है। पाठ तो बच्चों के लिए सबसे जरूरी चीज है। बच्चों को पढ़ाने, समझाने का तरीका बेहद मायने रखता है। वो तरीका मात्रा के लिये बहुत जरूरी है।

फ़ैयाज़ : किसी कविता का पाठ करना हो तो किन-किन बातों को ध्यान में रखना होगा?

वीरेन डंगवाल : दुश्चक्र में सृष्टा।

फ़ैयाज़ : हां, इसका पाठ करके हमें बताएं।

वीरेन डंगवाल : अरे, अरे ये तो बहुत चक्कर है। अभी? इसी वक्त?

फ़ैयाज़ : अभी

वीरेन डंगवाल : मैं अभी सुनाता हूँ।

‘यह कौन नहीं चाहेगा, उसको मिले प्यार?
यह कौन नहीं चाहेगा, भोजन वस्त्र मिले?
यह कौन न सोचेगा, हो छत सर के ऊपर
बीमार पड़े तो हो इलाज थोड़ा ढंग से,
बेटे-बेटी को मिले ठिकाना दुनिया में
कुछ इज्जत हो कुछ मान बढ़े,
फल फूल जायें,
गाड़ी में बैठने को जगह मिले, डर भी न लगे।
यदि दफ्तर में भी जायें किसी, तो न घबरायें।
अनजानों से घुलें मिलें भी, मन में न पछतायें।
कुछ चिंताएं भी हों, हां कोई हर्ज नहीं,
पर ऐसी नहीं कि मन उनमें ही जले-भुने।

हौसला दिलाने और बरजने आस-पास हों अपने साथी।
हों संगी-साथी अपने प्यारे खूब घने
पापड़, चटनी, आंचा-पांचा, हल्ला-गुल्ला,
दो, चार जशन भी कभी, कभी कुछ धूम-धायँ।
जितना संभव हो देख सकें इस धरती को,
हो सके जहां तक उतनी दुनिया घूम आयें,
ये कौन नहीं चाहेगा?
पर यह हमने कैसा समाज रच डाला है?
इसमें जो दमक रहा शर्तिया काला है,
वह कल्ल हो रहा सरेआम चौराहे पर,
निर्दोष और सज्जन जो भोला-भाला है
किसने आखिर ऐसा समाज रच डला है?
जिसमें बस वही दमकता है जो काला है।'

फ़ैयाज़ : बरजना, हब, आंचा-पांचा, हल्ला-गुल्ला, जशन जैसे शब्दों को आपने इस्तेमाल किया है। तो अगर, आप मानक भाषा का इस्तेमाल करते तो ऐसे शब्द नहीं इस्तेमाल करते।

वीरेन डंगवाल : मेरे ख्याल से तब इतनी अच्छी तरह से कम्युनिकेट नहीं कर पाता। इलाहाबाद में आंचा-पांचा शब्द का इस्तेमाल होता है, गली मोहल्ले में भी कहते हैं, आंचा-पांचा न करो। वो कई अर्थों में इस्तेमाल होता है कि बड़ा आंचा-पांचा हो गया, आदि। वो एक निरर्थक शब्द है जिसके कई अर्थ होते हैं। हमें उससे कोई परेशानी नहीं है। और मैं ये समझता हूँ कि उसको समझने वाले उसको खूब पसंद करते हैं। मतलब जो बहुत ही शाहिस्ता मिजाज लोग हैं जैसे हमारे भाई अपूर्वानन्द ही हैं, वे कविता में शायद इस भाषा को स्वीकार नहीं करेंगे। लेकिन इस कविता पर तो आज तक आपत्ति नहीं जताई या अशोक वाजपेयी जी हैं जो कुलीन भाषा के कवि हैं या दोस्त मंगलेश हैं, जो खुद एक अच्छे कवि हैं, वे खुद ऐसी भाषा का इस्तेमाल नहीं करेंगे लेकिन वे इस भाषा को पसंद करते हैं। कुछ लोग इस्तेमाल नहीं करते हैं इस भाषा को पर काफी पसंद करते हैं।

फ़ैयाज़ : हिन्दुस्तानी शब्द गांधीजी ने दिया था। जो दरअसल उर्दू मिश्रित भाषा है। लेकिन हिन्दुस्तानी कोई भाषा नहीं है, तो क्या उसे भाषा कहना उचित है?

वीरेन डंगवाल : मुझे कोई ऐतराज नहीं है। मैं हिन्दुस्तानी संगीत कहता हूँ, कर्नाटक संगीत कहता हूँ। परसों मैं अवध में था, फैजाबाद में। वहां मुझे ये खयाल आया कि ये गंगो-जमन तहजीब है, अवध का जो दिल है फैजाबाद में वह लखनऊ से भी ज्यादा बड़ा दिल है। संगीत, हिन्दू, मुसलमान, उनकी तहजीब ये सब अवध में हिन्दुस्तानी तहजीब है। मुझे तो इसमें कोई बुराई नजर नहीं आती। हांलाकि कुछ विचारकों को इस पर ऐतराज है। मैं नहीं जानता कि इसको लेकर क्या बहस चल रही है, पर मुझे इस भाषा या लज में कोई परेशानी नहीं है। ◆

परिचय : जेएनयू, दिल्ली से पीएचडी। दो दशकों से थियेटर से जुड़े हैं व गैर-सरकारी संस्था प्रथम के साथ काम करते हैं।

संपर्क : faiyaz@pratham.org